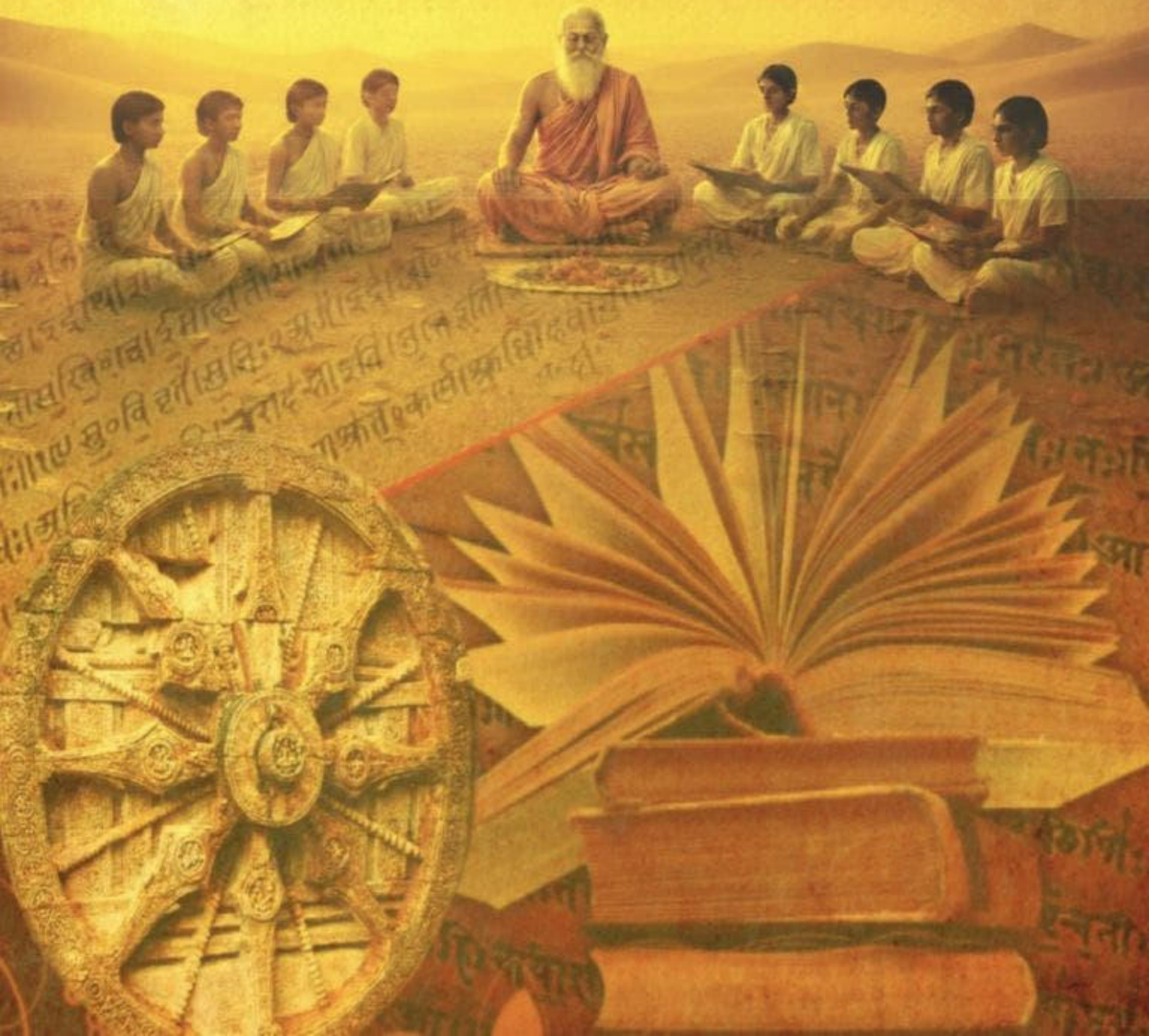


भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्गम और विकास

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा



भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :

पुष्पा शर्मा

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,

लोहाखान, अजमेर-305001

ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

मो. 9660111549

संस्करण

प्रथम 2026

ISBN : 978-81-993854-1-2

मूल्य - 400/-

रचना - भारतीय ज्ञान प्रणाली-उद्गम और विकास

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

आवरण - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक

श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 और वैदिक संस्कृति का अहिंसा विचार

डॉ. पिंगी पाराशर

सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)

हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

वैदिक परंपरा में प्रत्येक शब्द का अर्थ केवल उसके सामान्य या शाब्दिक अर्थ तक सीमित नहीं रहता। जब कोई शब्द विशेष मर्यादा, विद्या या आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रयुक्त होता है, तो उसके अर्थ में विशेषता आ जाती है। हिंसा और अहिंसा जैसे शब्द इसी श्रेणी में आते हैं। इनका सामान्य अर्थ तो समझना आसान है, लेकिन वैदिक दृष्टि और योग के सन्दर्भ में इनके कई स्तर और अर्थविशिष्टताएँ होती हैं।

लौकिक दृष्टि से अहिंसा :

लौकिक दृष्टि से अहिंसा का अर्थ हिंसा का अभाव है। इसका सरलतम रूप यह है कि किसी प्रकार का घात, प्रहार या चोट न करना ही अहिंसा है। हिंसा के सामान्य अर्थ में किसी को मारना, चोट पहुँचाना या क्षति पहुँचाना शामिल है। इस दृष्टि से देखा जाए तो जब कोई व्यक्ति कर्म द्वारा हिंसा करता है, तो उसे समाज और कानून की दृष्टि से दण्डनीय माना जाता है। कर्मणा हिंसा करना, चाहे वह प्रत्यक्ष रूप में हो या अप्रत्यक्ष रूप में, नियमों और न्याय के अनुसार दण्ड का कारण बनता है। यही कारण है कि अहिंसा का पालन केवल नैतिकता का विषय नहीं, बल्कि सामाजिक और न्यायिक दृष्टि से भी आवश्यक माना गया है।

वैदिक दृष्टि में अहिंसा का अर्थ केवल बाहरी कर्मों तक सीमित नहीं है। योग और वैदिक शिक्षाओं के अनुसार, अहिंसा को तीन मुख्य स्तरों में समझा गया है—कर्मणा (कर्म में हिंसा न करना), वाचा (वाणी में हिंसा न करना) और मनसः (मन में हिंसा न रखना)। इसका अर्थ यह है कि केवल शारीरिक रूप से हिंसा न करना पर्याप्त नहीं है, बल्कि वाणी और विचार में भी हिंसा या हानिकारक प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए। जब व्यक्ति अपने विचार, शब्द और कर्म में संतुलन और संयम रखता है, तभी अहिंसा का वास्तविक पालन होता है।

इसके अलावा, अहिंसा का अर्थ केवल नकारात्मक निषेध (हिंसा न करना) तक सीमित नहीं है। वैदिक शिक्षा और योग के अनुसार, अहिंसा का सकारात्मक पक्ष भी है—यह करुणा, सहानुभूति, सहयोग और परस्पर सहिष्णुता को बढ़ावा देती है। इस दृष्टि से, अहिंसा न केवल व्यक्तिगत आचार और नैतिकता का आधार है, बल्कि यह समाज और राष्ट्र के समग्र स्वास्थ्य और सौहार्द के लिए भी आवश्यक है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में इस वैदिक दृष्टिकोण को आधुनिक शिक्षा से जोड़कर देखा गया है। नीति में बच्चों और युवाओं को केवल शैक्षिक ज्ञान प्रदान करने के साथ-साथ उनके चरित्र निर्माण और सामाजिक कौशल को भी विकसित करने पर जोर दिया गया है। अहिंसा, सहिष्णुता, सहयोग और सामाजिक जिम्मेदारी के गुणों को शिक्षा प्रणाली में शामिल किया गया है। इसका उद्देश्य यह है कि व्यक्ति केवल अपने हित में नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के हित में भी विचार और कर्म कर सके। शिक्षा नीति में यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि वैदिक संस्कृति के मूल सिद्धांत—जैसे अहिंसा, अपरिग्रह और करुणा—आज के समय में भी शिक्षा और समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं।

शिष्टमर्यादा में अहिंसा :

शिष्टमर्यादा में अहिंसा का विचार वैदिक और योग परंपरा में वाचा-अहिंसा के रूप में स्पष्ट किया गया है। इसमें यह बताया गया है कि केवल शारीरिक हिंसा ही हिंसा नहीं होती, बल्कि वाणी द्वारा किसी के प्रति कड़वी, कठोर या अपमानजनक भाषा का प्रयोग करना भी हिंसा की श्रेणी में आता है। इसे वाचा-हिंसा कहा गया है, और इसका विपरीत वाचा-अहिंसा है, अर्थात् वाणी में संयम, शिष्टता और मधुरता बनाए रखना। वाचा-हिंसा का प्रभाव गहरा और दीर्घकालिक होता है। शारीरिक चोट समय के साथ भर जाती है, लेकिन वाणी से हुए घाव मन और भावनाओं में लंबे समय तक बना रहता है और जीवन भर मानसिक पीड़ा का कारण बन सकता है।

महाभारत में इसका उदाहरण बड़े मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया गया है। वहाँ कहा गया है कि वाणों या शस्त्रों से हुए घाव समय के साथ भर जाते हैं, लेकिन वाणी से हुए घाव हमेशा गहरे रहते हैं। वाणी के शस्त्र व्यक्ति के मर्मस्थलों में प्रवेश कर जाते हैं और जिस व्यक्ति पर चोट पहुँचती है, वह दिन-रात उसकी पीड़ा और प्रभाव को अनुभव करता है। इसलिए शिष्टजन हमेशा अपनी वाणी का नियंत्रण रखते हैं और किसी के प्रति अपमानजनक, कठोर या दुख पहुँचाने वाले शब्दों का प्रयोग नहीं करते।

कानूनी दृष्टि से भी फर्क यह है कि कर्मणा हिंसा (शारीरिक हिंसा) करने वाला तुरंत पुलिस या न्यायिक व्यवस्था द्वारा दंडनीय ठहराया जाता है। जबकि वाचा-हिंसा के लिए सीधे पुलिस कार्रवाई नहीं होती; इसके लिए मानहानि, आपराधिक अपराध या अन्य सिविल अभियोग के माध्यम से न्यायालय में कार्यवाही की जाती है। इस प्रकार वाचा-अहिंसा केवल नैतिक या शिष्ट आचार का विषय ही नहीं है, बल्कि सामाजिक और कानूनी दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

अध्यात्मविद्या में अहिंसा :

अध्यात्मविद्या में अहिंसा का विचार लौकिक और शिष्टमर्यादा की सीमाओं से आगे जाकर अत्यन्त सूक्ष्म और गहन रूप में सामने आता है। यहाँ अहिंसा का मूल्यांकन केवल बाह्य आचरण के आधार पर नहीं किया जाता, बल्कि मनुष्य के अंतःकरण, उसकी भावना और चिंतन-प्रवृत्ति को भी समान रूप से महत्व दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति न तो किसी पर शस्त्रप्रहार करता है और न ही वाणी से कटु या कठोर शब्द कहता है, किंतु अपने मन में किसी के प्रति द्वेष, वैर या अहित का विचार रखता है, तो वह लौकिक दृष्टि से तथा सामाजिक शिष्टाचार की मर्यादा में अपराधी नहीं माना जाता। समाज और कानून उसे दोषी नहीं ठहराते, क्योंकि उसने कोई प्रत्यक्ष हिंसात्मक कर्म नहीं किया। किन्तु अध्यात्मविद्या की दृष्टि से ऐसा व्यक्ति दोषी माना जाता है। योगदर्शन में अहिंसा को अत्यन्त व्यापक अर्थ में परिभाषित किया गया है। पतंजलि योगसूत्र (2/30) पर व्यासभाष्य में कहा गया है—

‘अहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानाम् अनभिद्रोहः।’ इसका तात्पर्य यह है कि सब प्रकार से, सदा, सभी प्राणियों के प्रति द्रोह या वैरभाव का अभाव ही अहिंसा है। यहाँ अहिंसा केवल कर्म और वाणी तक सीमित नहीं रहती, बल्कि मन की वृत्तियों को भी अपने दायरे में ले लेती है। मन में किसी के प्रति द्वेष, ईर्ष्या, प्रतिशोध या अहित की भावना रखना भी हिंसा ही मानी जाती है। यही मनसा-हिंसा है।

यद्यपि मनसा-हिंसा से प्रत्यक्ष रूप में दूसरे व्यक्ति को दुःख नहीं पहुँचता, फिर भी अध्यात्म की दृष्टि से यह दोषपूर्ण है। इसका कारण यह है कि अहित का चिंतन करने वाला स्वयं अपने चित्त को मलिन करता है। ऐसे विचार व्यक्ति की अंतःशुद्धि में बाधक बनते हैं और उसके आध्यात्मिक विकास को रोक देते हैं। अध्यात्मविद्या का उद्देश्य केवल सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना नहीं, बल्कि आत्मा की शुद्धि और चित्त की निर्मलता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मन में भी अहिंसा का पूर्ण पालन आवश्यक माना गया है।

मनसा-अहिंसा का अर्थ है कि व्यक्ति अपने मन में किसी के प्रति द्वेष, वैर,

घृणा या हानि की भावना न रखे। वह सब प्राणियों के प्रति मैत्री, करुणा और समभाव का भाव विकसित करे। यही कारण है कि योग और वैदिक अध्यात्म में अहिंसा को यमों में प्रथम स्थान दिया गया है। यह अहिंसा का वह स्तर है जहाँ साधक केवल बाह्य आचरण में नहीं, बल्कि अपने अंतरंग जीवन में भी शांति और सद्भाव को स्थापित करता है। इससे भी आगे वैदिक अध्यात्म में अहिंसा का और अधिक उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है, जहाँ अहिंसा केवल नकारात्मक निषेध न रहकर सार्वभौमिक करुणा और सर्वहित की भावना में परिणत हो जाती है।

वैदिक अध्यात्म में अहिंसा :

वैदिक अध्यात्म में अहिंसा का स्वरूप लौकिक, शिष्टमर्यादा और मनोस्तर की अहिंसा से भी अधिक व्यापक, सूक्ष्म और उच्चतर है। यहाँ अहिंसा केवल हिंसा के अभाव तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह स्नेह, मैत्री और आत्मीयता के सकारात्मक भाव में परिणत हो जाती है। यजुर्वेद के प्रसिद्ध मंत्र (36/18) में इसी वैदिक अहिंसा का अत्यन्त उदात्त रूप प्रस्तुत किया गया है। इस मंत्र में साधक परमात्मा से प्रार्थना करता है कि वह उसे श्रद्धा और स्नेह में दृढ़ करे, और यह भाव उत्पन्न करे कि समस्त प्राणी उसे मित्र की दृष्टि से देखें तथा वह स्वयं भी सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखे। साथ ही, यह भावना भी प्रकट की गई है कि हम सब परस्पर एक-दूसरे को मित्रभाव से देखें।

यहाँ अहिंसा का अर्थ केवल यह नहीं है कि किसी को शारीरिक, वाचिक या मानसिक कष्ट न पहुँचाया जाए, बल्कि इसका उच्चतर अर्थ यह है कि प्रत्येक प्राणी के प्रति मित्रता, स्नेह और आत्मीयता का भाव विकसित किया जाए। पहले स्तर पर अहिंसा हिंसा की निवृत्ति है, अर्थात् किसी भी प्रकार का घात, प्रहार या द्रोह न करना। दूसरे और अधिक उन्नत स्तर पर यह स्नेह की प्रवृत्ति है, जिसमें दूसरे को अपने समान मानने की आत्मत्व-भावना विकसित होती है। यही वैदिक अहिंसा का विशिष्ट और उत्कृष्ट स्वरूप है। यह अहिंसा कर्म, वाणी और मन से भी आगे बढ़कर आत्मा के स्तर पर स्थित होती है, इसलिए इसे आत्मना-अहिंसा या आत्मीयतारूप अहिंसा कहा जा सकता है। यदि इस स्तर पर अहिंसा का अभाव हो, अर्थात् आत्मीयता न हो, तो वह आत्मना-हिंसा मानी जाती है।

मानव जीवन में सामान्यतः यह देखा जाता है कि जो लोग संपत्ति, स्वास्थ्य या परिवार से समृद्ध होते हैं, उन्हें देखकर दूसरों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है। यह ईर्ष्या भी हिंसा का ही एक सूक्ष्म रूप है। इसी प्रकार जो लोग धन से असमृद्ध, स्वास्थ्य से दुर्बल या परिवार से निःसहाय होते हैं, उन्हें देखकर तिरस्कार और अनादर

का भाव उत्पन्न हो जाता है। यह तिरस्कार भी अंततः हिंसा में ही परिणत होता है और कभी-कभी उन्हें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सताने की प्रवृत्ति पैदा कर देता है। वैदिक अध्यात्म के अनुसार ईर्ष्या और तिरस्कार दोनों ही आत्मना-हिंसा हैं। इसके विपरीत, यदि व्यक्ति सभी प्राणियों के प्रति मित्रदृष्टि रखता है, तो न ईर्ष्या उत्पन्न होती है और न तिरस्कार। तब उसके भीतर आत्मीयतारूप अहिंसा स्थिर हो जाती है।

वैदिक ग्रंथों में यह स्पष्ट कहा गया है कि यदि मित्रदृष्टिरूप अहिंसा मनुष्य के जीवन में आ जाए, तो मानवता का स्तर अत्यन्त ऊँचा उठ सकता है और संसार के अधिकांश संघर्ष समाप्त हो सकते हैं। जिस व्यक्ति के भीतर मित्रभाव पूर्ण रूप से परिपक्व हो जाता है, उसके प्रति अन्य प्राणी भी स्वाभाविक रूप से मित्रभाव ही रखते हैं, वैरभाव नहीं। योगदर्शन में भी कहा गया है— ‘अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः’, अर्थात् जहाँ अहिंसा प्रतिष्ठित हो जाती है, वहाँ उसके सान्निध्य में वैर का स्वतः ही त्याग हो जाता है।

मित्रदृष्टि और स्नेहभाव को प्रकट करने के प्रमुख साधन हाथ, वाणी और नेत्र माने गए हैं। स्नेह के साथ किया गया स्पर्श, स्नेह से कही गई वाणी और स्नेहपूर्ण दृष्टि प्राणी के मन और शरीर पर गहरा प्रभाव डालती है। उदाहरण के रूप में बालक के मस्तक की पीड़ा को लिया गया है। यदि स्नेहरहित व्यक्ति भार समझकर कठोर हाथ से मस्तक दबाए, तो पीड़ा कम होने के बजाय बढ़ जाती है। किंतु जब माता स्नेह से भरे कोमल हाथ से बालक के मस्तक पर हाथ फेरती है, तो पीड़ा शांत हो जाती है और बालक को सुखद निद्रा आ जाती है। इसी प्रकार स्नेहरहित वाणी रोगी को और अधिक पीड़ित कर देती है, जबकि स्नेहभरी वाणी उसके लिए अमृत के समान बन जाती है।

स्नेहपूर्ण दृष्टि का प्रभाव अत्यन्त व्यापक बताया गया है। रोगी की माता, पत्नी, बहन या पुत्री यदि स्नेह से उसकी ओर देखती है, तो रोगी अपने रोग को कुछ समय के लिए भूल जाता है और अनुभव करता है कि उसका कष्ट कम हो गया है। यहाँ तक कि पशु-पक्षियों और हिंसक प्राणियों पर भी मित्रदृष्टि का प्रभाव पड़ता है। वैदिक विचार के अनुसार हाथ का प्रभाव निकटवर्ती पर, वाणी का प्रभाव कुछ दूरी तक और दृष्टि का प्रभाव उससे भी अधिक व्यापक क्षेत्र में पड़ता है। नेत्रों के माध्यम से व्यक्त आन्तरिक स्नेह का प्रभाव प्राणीमात्र पर पड़ता है, जैसा कि वेद में कहा गया है— ‘मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।’

इसी वैदिक अहिंसा के आधार पर प्राणिघात और मांसाहार पर भी गंभीर विचार प्रस्तुत किया गया है। यह प्रश्न उठाया गया है कि जो मनुष्य स्वयं जीना

चाहता है, वह दूसरे प्राणी को कैसे मार सकता है। जो इच्छाएँ वह अपने लिए चाहता है, वही उसे दूसरों के लिए भी सोचना चाहिए। यदि किसी प्राणी में जीते रहने की इच्छा है और वह इच्छा ईश्वरीय व्यवस्था से है, तो उसे मार देना ईश्वरीय व्यवस्था के विरुद्ध होने से पाप ठहरता है। इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी की जरा अवस्था, अर्थात् बुढ़ापा, ईश्वर की व्यवस्था से है। अतः किसी प्राणी को उसकी प्राकृतिक आयु से पहले मार देना भी अधर्म और हिंसा है।

वैदिक आदर्श प्राणियों के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार का है। अथर्ववेद में दूध देने वाले पशुओं, औषधियों के रस और घोड़ों के वेग को मानव के लिए सुखकारक और दोषों से मुक्त करने वाला बताया गया है, न कि उनके मांसाहार की शिक्षा दी गई है। इसी प्रकार एक अन्य मंत्र में माता, पिता, मनुष्य मात्र, गौ आदि पशुओं और समस्त जंगम प्राणियों के लिए कल्याण की कामना की गई है। यह दृष्टि ही वैदिक अहिंसा का मूल है, जिसमें सभी प्राणियों के प्रति स्नेह और मंगलकामना निहित है।

अंततः वैदिक अध्यात्म यह प्रतिपादित करता है कि जिस मनुष्य में जितना अधिक स्नेहभाव प्राणीमात्र के प्रति होगा, वह उतना ही अधिक अन्तर्यामी परमात्मा के प्रेम और सान्निध्य का पात्र बनेगा। स्नेह के माध्यम से ही मनुष्य अपने को परमात्मा से जोड़ पाता है। जैसे दीपक में स्नेह रूपी तेल से ज्योति प्रकट होती है, वैसे ही जिस मनुष्य के भीतर स्नेहभाव होगा, उसी में प्रकाशस्वरूप परमात्मा का प्रकाश प्रकट होगा। यही वैदिक अध्यात्म में अहिंसा का सर्वोच्च और पूर्ण स्वरूप है।

निष्कर्षतः वैदिक परंपरा में अहिंसा केवल शारीरिक हिंसा न करने का नाम नहीं है। लौकिक स्तर पर यह शस्त्रप्रहार से बचना है, शिष्टमर्यादा में वाणी से किसी को दुःख न देना है, अध्यात्मविद्या में मन में द्वेष और वैर न रखना है, और वैदिक अध्यात्म में यह मित्रदृष्टि तथा स्नेहभाव के रूप में प्रकट होती है। इस प्रकार अहिंसा कर्म, वाणी, मन और आत्मा—चारों स्तरों पर स्थापित होकर मानव जीवन को शुद्ध, समरस और आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाती है।

☆☆☆